जुलाई १९९२ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

महान परित्याग

अपने अनेक जन्मों के परिश्रम-पुरुषार्थ से जब कोई व्यक्ति सम्यक् सम्बुद्ध बनता है तो उसकी लम्बी भव-यात्रा के उस अंतिम जीवन में स्वभावतः अनेक लोग उसके सम्पर्क में आते हैं। उसके प्रभावशाली व्यक्तित्व से, उज्जवल चरित्र से, निष्कपट व्यवहार से, सर्वथा निस्संग, निस्पृह, निर्लिप्त परन्तु कठोर, कर्मठ, आदर्श जीवनचर्या से उसके द्वारा साम्प्रदायिकताविहीन, सार्वजनीन, सार्वभौमिक, सनातन, सत्यधर्म के प्रकाशन-प्रशिक्षण से, लोक-मंगल के सद्भावों से ओत-प्रोत उसकी करुणासिंचित वाणी से लोगों का उसकी ओर आकर्षित होना सहज स्वाभाविक है। उनमें से कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिनके मन में ऐसा धर्म-संवेग जागता है कि हम भी इसी प्रकार सर्वगुण सम्पन्न, सर्वज्ञ महामानव बनें। केवल अपना ही उद्धार करके न रह जांय, इन सम्यक् सम्बुद्ध की भांति अनेकानेक प्राणियों के उद्धार में सहायक बनें।

जिस-जिस के मन में ऐसी कल्याणी धर्म-कामना जागती है, उपस्थित सम्यक् सम्बुद्ध उन सबको सम्यक् सम्बुद्ध बनने का आशीर्वाद् नहीं दे देते। वह त्रिकालज्ञ होते हैं। अपने बोधि-नेत्रों से उस-उस व्यक्ति का भूत, वर्तमान और भविष्य देख लेते हैं और पात्र अनुकूल हो तो उसे सम्यक् सम्बुद्ध होने का आशीर्वाद् ही नहीं देते, प्रत्युत् इस सम्बन्ध में भविष्यवाणी भी करते हैं कि यह व्यक्ति कब, कहां, किसके यहां जन्म लेकर, किस नाम, गोत्र वाला होकर सम्यक् सम्बुद्ध बनेगा।

सम्यक् सम्बुद्ध बनने की धर्मकामना करने वाले योग्य व्यक्ति को बहुत बड़ा त्याग करना पड़ता है। उपस्थित सम्यक् सम्बुद्ध पात्र की इसी पात्रता को जांचते हैं। उस व्यक्ति के पास पूर्व जन्मों की संचित पुण्य-पारमिताओं का इतना संग्रह होना ही चाहिए कि उसी समय धर्मोपदेश सुनते-सुनते उसके भीतर साधना जग जाय और वह जीवन मुक्त अरहंत अवस्था प्राप्त कर ले। वह जानता हो कि मैं किसी सम्यक् सम्बुद्ध के सम्पर्क, शरण में आया हूं और मेरा मानस इतना विकार-विमुक्त हो चुका है कि जो अनुशय क्लेश यानि पूर्व जन्मों के विकारों की बची हुई क्षीण सी जड़ें रह गई हैं वे अब निकल सकती हैं और मैं भवमुक्त हो सकता हूं। इतना जानते हुए भी वह व्यक्ति अपने लिए तत्काल प्राप्त हो सकने वाली इस मुक्ति का जान बूझ कर परित्याग करता है। मैं ही नहीं मेरे साथ अन्य अगणित दुखियारों के लिए मुक्ति का द्वार खुले, इस उदात्त भाव से यह परित्याग करता है। उपस्थित सम्यक् सम्बुद्ध को यह देखना होता है कि यह व्यक्ति सचमुच त्याग कर रहा है या नहीं। जिसके पास कुछ संचित संग्रह ही न हो और वह कहे कि मैं महान् त्याग कर रहा हूं तो यह निरर्थक बात होगी। जिसमें अभी इसी जीवन में जीवन-मुक्त अरहंत बन सकने की क्षमता और योग्यता न हो वह व्यक्ति अपनी जीवन मुक्ति की संभावनाओं का त्याग करे, तो यह हास्यास्पद् बात ही होगी।

पर्याप्त संचित पुण्य-पारमिता हो तो सम्यक् सम्बुद्ध की धर्म-देशना सुनते-सुनते साधक अपने भीतर अनित्य-बोध की अनुभूति करने लगता है और किसी भी क्षण निरोध अवस्था प्राप्त कर नित्य, शाश्वत, ध्रुव इन्द्रियातीत निर्वाण अवस्था का साक्षात्कार कर लेता है। यों जन्म, जरा, व्याधि, मरण के भव-चक्र से पूर्णतया मुक्त होने का उसे पहला अनुभव हो जाता है। साधक सामान्य जन की अनार्य अवस्था से आर्य अवस्था में प्रतिष्ठित हो जाता है। इस अवस्था में वह चारों अधोगतियों (निरय, असुर, प्रेत और तिरश्छन्न याने पशु-पक्षी, सरिसृप आदि) से सर्वथा विमुक्त हो जाता है। इस अवस्था को सोतापन्न अवस्था कहते हैं; यानि यह व्यक्ति अब विमुक्ति के स्त्रोत में पड़ गया। इसके सर्वथा भव-विमुक्त होने में अब कोई बाधक नहीं बन सकता और विपश्यना करते हुए यह व्यक्ति स्त्रोतापन्न के आगे सगदागामी, अनागामी और अरहंत की तीनों अवस्थाएं उपलब्ध कर लेता है तो पूर्णतया विमुक्त हो जाता है। ऐसे व्यक्ति का पुनर्जन्म नहीं होता, यही उसका अंतिम जन्म होता है। ऐसे व्यक्ति की पुनर्मृत्यु नहीं होती, इस जीवन का अन्त उसकी अंतिम मृत्यु है। यों जन्म-मृत्यु के चक्कर से छूट जाता है, याने सारे दुखों से छूट जाता है। किसी को ऐसी दुःख-विमुक्ति सहज उपलब्ध हो और वह उसे त्याग दे तो ही सही माने में महान् परित्याग है जो कि उस व्यक्ति का बोधि-सत्व याने भावी बुद्ध बन सकने की क्षमता का प्रमाण है।

सम्यक् सम्बुद्ध भगवान दीपङ्कर ने ऐसी ही अद्भुत क्षमता ब्राह्मण तपस्वी सुमेध में देखी और तभी उसके लिए आशीर्वचन कहे और मांगलिक भविष्यवाणी की। उन्होंने देखा कि इस तापस में अनेक कल्पों के अनेकानेक जन्मों में संग्रहित की गई पुण्य-पारमिताएं यथेष्ठ हैं। इस जीवन में भी इस तपस्वी ने पैत्रिक विरासत में मिली हुई विपुल धन सम्पदा त्यागी है और हिमालय प्रदेश में गम्भीर तपस्या करके आठों ध्यान समापत्तियां उपलब्ध की हैं।

पहले से चौथे ध्यान तक की सफलता तापस को रूप-ब्रह्मलोक में जन्म लेने का अधिकारी बनाती है। दान, शील, सदाचार आदि के पुण्य कर्मों के कारण कोई व्यक्ति छः में से किसी एक देव भूमि में अथवा पुनः मनुष्य भूमि में जन्म ले सकता है। परन्तु प्रथम ध्यान की उपलब्धि होते ही रूप-ब्रह्मलोकों से जुड़ जाता है। पहले से चौथे ध्यान का क्षेत्र शरीर के भीतर होता है और नाम तथा रूप याने चित्त और भौतिक शरीर से सम्बद्ध रहता है। अतः इन चारों ध्यानों का ध्यानी अपने ध्यान की सूक्ष्मता और गम्भीरता के अनुकूल क्रमशः सूक्ष्मतर होते हुए पहले से सोलहवें रूप-ब्रह्मलोक में जन्म लेता है, जहां प्राणी की आयु कई कल्पों की होती है। यहां के प्राणी अत्यन्त सूक्ष्मातिसूक्ष्म भौतिक शरीरधारी होते हैं इसलिए यह लोक रूप-ब्रह्मलोक कहलाते हैं।

पांचवें से आठवां ध्यान अरूप ध्यान कहलाता है। चौथे ध्यान से आगे बढ़ते ही साधक रूप से याने भौतिक आलम्बनों से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लेता है। यहां तक कि अपने भौतिक शरीर से भी सम्पर्क तोड़ कर मात्र आकाश को अपने ध्यान का आलम्बन बना कर इसका विस्तार करता हुआ "अनन्त आकाश" के आलम्बन में समाहित होकर पांचवें ध्यान में प्रतिष्ठित होता है। फिर इस समाधि से उठ कर वह विज्ञान यानि चैतन्य मानस का वह प्रथम खण्ड जो जानने का काम करता है उसी को आलम्बन बना कर काम शुरू करता हुआ उसे क्रमशः फैलाते हुए "अनन्त विज्ञान" के आलम्बन में समाहित हो छठे ध्यान में प्रतिष्ठित होता है। इससे उठ कर अकिञ्चन याने "कुछ नहीं है", का आलम्बन ग्रहण कर उसे फैलाता है और "अनन्त अकिञ्चन" के आलम्बन में समाहित हो सातवें ध्यान में प्रतिष्ठित होता है। पांचवें से सातवें ध्यान तक मानस का वह हिस्सा जो पहचानने और मूल्यांकन करने का काम करता है, जिसे संज्ञा कहते हैं और जो सारे प्रपंचों की जड़ है वह दुर्बल होती जाती है। तब साधक ऐसी अवस्था पर पहँचता है जिसे "नैवसंज्ञानासंज्ञा" अवस्था कहते हैं (वह अवस्था जिसमें संज्ञा इतनी दुर्बल हो जाती है कि उसके होने, न होने का स्पष्ट आभास नहीं हो पाता)। यों इस आठवें ध्यान में समाहित हो, प्रतिष्ठित होता है।

पांचवें से आठवें ध्यान में आकाश अथवा मानस के अंगों को छोड़ कर और कोई भौतिक आलम्बन नहीं होता। अतः इन समाधियों में सधा हुआ साधक अरूप-ब्रह्मलोक के क्रमशः पहले से चौथे भवाग्र लोक में जन्म

लेने का अधिकारी होता है। अधोगति के चार, मनुष्य का एक, देवजाति के छः और रूप-ब्रह्मलोक के सोलह, अरूप के चार, यों इकत्तीस लोकों में से कहीं जन्म ले, जीवन की अवधि कुछ क्षणों की हो अथवा अरूप-ब्रह्मलोक की भांति अगणित कल्पों की हो, अधोगति के दुखों की हो अथवा देव ब्रह्म-लोक के असीम सुख, आनन्द की हो, हर जन्म देर-सबेर मृत्यु में परिणत होता है और पुनर्जन्म होने के कारण भव-चक्र चलता रहता है। भवमुक्ति नहीं होती।

आठों ध्यानों मे निपुण साधक दो प्रकार के होते हैं। उनमें से अधिकांशतो वे जो आठवें ध्यान को साधना की पराकाष्ठा मान कर याने उसे ही मुक्ति, मोक्ष मान कर संतुष्ट हो जाते हैं और कुछ थोड़े से वे जो इस अवस्था में अत्यंत सूक्ष्म स्तर पर उत्पाद्-व्यय की अनुभूति करते हैं। अतः इसे अनित्यता का क्षेत्र समझते हुए उसके परे, नित्य, शाश्वत्, ध्रुव की खोज चालू रखते हैं। इन अवस्थाओं में एक या अधिक इन्द्रियां काम करती हुई पाते हैं। अतः इन्द्रियों से परे इन्द्रियातीत अवस्था की खोज जारी रखते हैं। चौथे ध्यान के बाद रूप याने भौतिक शरीर तथा सभी भौतिक पदार्थों से सम्बन्ध विच्छदे हो जाता, परन्तु नाम याने चित्त और चैतसिक का क्षेत्र कायम रहता है। अतः चित्त के परे की परम अवस्था की खोज चालू रहती हैं।

ऐसा व्यक्ति अपने चित्त की गहराइयों में अत्यन्त सूक्ष्म अवस्था में पूर्व संस्कारों की जड़ें देखता है और समझता है कि जब तक मेरे भीतर भव की जड़ें कायम है तब तक मैं भव-मुक्त नहीं हुआ। समय पाकर यह जड़ें विकसित होंगी, फूलेंगी और फलेंगी और नए-नए भवों का, नए नए जन्मों का कारण बनेंगी। यह क्लेश पांचवें से आठवें ध्यान में सो गये थे परन्तु समाप्त नहीं हुए थे। यह अनुशय क्लेश याने सुषुप्त भव-दुःख समय पाकर फिर जाग उठेंगे। यह अन्तःशायी भवबीज कभी भी अंकुरित हो सकते हैं। अतः वह बखूबी समझता है कि मैं अभी भव-मुक्त नहीं हुआ। मुझे भव-मुक्ति की कोई राह खोजनी है। ऐसा मुमुक्षु जब किसी सम्यक् सम्बुद्ध का साक्षी बनता है और उसके मन में सम्यक् सम्बुद्ध बनने की धर्म कामना जागती है तो वही अधिकारी व्यक्ति कहलाता है।

भगवान् दीपङ्कर सम्यक् सम्बुद्ध के समक्ष कीचड़ में साष्टांग लेटा हुआ ब्राह्मण तपस्वी सुमेध ऐसा ही अधिकारी व्यक्ति था। उसके पास अनेक कल्पों की पारमिताओं का ऐसा यथेष्ठ सम्बल था कि यदि उस समय भगवान् उपदेश दें तो सुनते-सुनते ही उसके भीतर उदय-व्यय का अनित्य-बोध जाग जाय और तत्काल नित्य-ध्रुव का दर्शन करता हुआ क्रमशः अरहंत की निरोध अवस्था उपलब्ध कर ले। पर इस प्रकार लगभग हाथ आए हुए अरहंत फल को वह त्यागता है। इसी माने में महान् त्यागी कहलाता है।

चौथे से आठवें ध्यान की उपलब्धि करते-करते साधक पांच लौकीय अभिञ्ञा (अभिज्ञान) याने लौकीय सिद्धियां प्राप्त कर लेता हैः-

१. ऋद्धिविध याने विविध प्रकार की ऋद्धियां जैसे एक से अनेक होना, अन्तर्धान हो जाना आदि-आदि चमत्कार प्रयोग।

२. दिव्यश्रोत्र याने ऐसी सिद्धि जिसके द्वारा समीप व दूर की, मनुष्य या मनुष्येत्तर प्राणियों की वाणी सुन समझ लेने की क्षमता प्राप्त हो जाय।

३. चैतोपर्यज्ञान याने ऐसी सिद्धि जिससे पराए चित्त को जान सकने की क्षमता प्राप्त हो जाय।

४. पूर्वेनिवासानुस्मृति याने ऐसी सिद्धि जिससे अनेक पूर्व जन्मों का ज्ञान जाग उठे।

५. दिव्य-चक्षु (च्युत्योत्पाद ज्ञान) याने ऐसी सिद्धि जिससे दिव्य चक्षु प्राप्त हो जांय और सभी लोकों के प्राणियों को, उनकी गतिविधियों को, उनकी च्युति याने मृत्यु को और मरणोपरान्त उत्पाद याने पुनर्जन्म को देख सके।

स्पष्ट है, इन पांचों लौकीय सिद्धियों से भव-मुक्ति नहीं हो सकती। भव-मुक्ति उस छठी लोकोत्तर सिद्धि से होती है जिसे आश्रव-क्षय-ज्ञान-सद्धि कहा जाता है। इससे साधक अपने तथा औरों के भीतर पूर्णतया क्षय हुए आश्रवों द्वारा नितान्त विमुक्ति का दर्शन करता है और परम विमुक्त सिद्ध पुरुष बन जाता है।

ब्राह्मण तापस सुमेध पांचों लौकीय सिद्धियों का धनी था। परन्तु छठी सिद्धि का उसके पास अभाव था। इसीकी उसे खोज थी। वह समझता था कि आश्रव-क्षय अवस्था की छठी सिद्धि आठों ध्यान के परे की सिद्धि है। वह यह भी समझता था कि इसे ही प्राप्त कर कोई व्यक्ति भव-मुक्त होता है और अरहंत बुद्ध कहलाता है। इसी कारण लोक में बुद्ध उत्पन्न हुए हैं - यह सुनते ही हर्ष-विभोर हुआ, रोमांचित हुआ। उनके दर्शन के लिए लालायित हो उठा और सेवा में तत्पर हो गया।

भगवान् दीपङ्कर सम्यक् सम्बुद्ध के सामने आते ही उसने परचित्त-ज्ञान की सिद्धि से देखा कि यह सचमुच आश्रव विमुक्त हैं, अतः निश्चित रूप से अरहंत हैं, बुद्ध हैं। मैंने आठों ध्यानों का अभ्यास किया है। इस व्यक्ति के मार्गदर्शन से मुझे अवश्य अरहंत अवस्था प्राप्त हो सकती है जिसकी कि मुझे खोज थी। परन्तु फिर सोचता है कि मेरे अकेले की मुक्ति के लिए प्रयत्नशील होना तो बड़ी ओछी बात हुई। अपने साथ-साथ अन्य अगणित प्राणियों की मुक्ति में सहायक हो सकूं, इसी में सार्थकता है।

अतः आश्रव-मुक्त कर सकने वाली विद्या की मांग करने की बजाय उसने सम्यक् सम्बुद्ध बनने की कामना प्रकट की तो लोक कल्याण के लिए अपने तत्काल सिद्ध होने वाले स्वार्थ का सचमुच परित्याग किया। महा-मंगलदायी परम परित्याग ही था वह।

मंगल मित्र

स.ना.गो.